(देश देशान्तरों में प्रचारित, सबसे सस्ता, उच्च कोटि का आध्यात्मिक-पत्र

सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई ।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई ॥

वार्षिक मूल्य २) सम्पादक-श्रीराम शर्मा आचार्य। एक अंक

वर्ष ६ } मथुरा, १ अगस्त सन् १९४५ ई० { अं

आत्मिक सफलता प्राप्त करो ।

कुछ व्यक्ति धन संग्रह को सफलता मानते हैं कुछ मान प्रतिष्ठा को सफलता की अन्तिम स maनते हैं किन्तु यदि तुम गंभीर चिंतन करके देखो तो अन्त में तुम्हें यही प्रतीत होगा कि परमानन्द प्राप्ति ही वास्तविक सफलता है। आपने कितना ही धन संग्रह किया हो किन्तु क्या मालूम वह जाता रहे। हमें स्मरण रखना चाहिए कि स्थायी वस्तु हमारी आध्यात्मिक सफलता ही है, वही वांछन है। किन्तु शोक! महाशोक!! कंकड़ों के बदले हम हीरों को फेंक देते हैं। क्षणिक सुख के लिए अ आत्मा के अटल आनन्द से वंचित रह जाते हैं। आत्मा के आनन्द, उस चिरंतन सुख की ओर देखते तक नहीं। संसार के अधिकांश दुःखों का यही कारण है। इन्द्रिय, वासना, तथा मोह के तुमने वह परमात्म तत्त्व विलीन कर दिया है जो तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है। तुम्हारी आत्मा में मह शक्ति प्रस्तुत है। सब कुछ तुम्हारे अन्तःकरण में मौजूद है। वहीं सर्वोत्कृष्ट सफलता, स्थायी सफल है। जब वह अनन्त शक्ति तुमको आलिंगन करेगी, तो तुम्हारी समस्त प्रतिकूलताएँ नष्ट हो जायेंगी।

तुम ईश्वरीय प्रकाश के ज्योतिर्मय पिंड हो। उसे जानो और तुम फिर अपने को सारे संसार फैला पाओगे। चारों ओर तुम्हारा ही मंजुल प्रकाश होगा।

स्वार्थ त्याग में अनन्त आनंद

सब लोग प्रति दिन लेन देन से भली भांति परिचित हैं। सेर भर शक्कर की यदि जरूरत पड़ती है तो बनिये की दूकान से पैसे देकर शक्कर खरीद सकते हैं। इसी भांति अपने देशके अनाज को भेजकर उसके पलटे में दूसरे देश से हम कपड़ा मांग सकते हैं, परन्तु यदि हमें आरोग्यता की आवश्यकता हो तो आपको आने या चार आने की छटांक, आध पाव आरोग्यता बाजार में बिकती हुई नजर नहीं आती। इसी भांति यदि हम पांचसौ रुपये में भी एक सेर विद्या खरीदना चाहें तो भी न मिल सकेगी। मिलने की तो बात ही क्या, लोग हमारे इस सौदे की बात सुन कर हमें पागल समझेंगे। सिद्धांत यह है कि जड़ पदार्थों के द्वारा जड़ पदार्थों की ही प्राप्ति हो सकती है। जब धन के द्वारा विद्या, आरोग्यता अथवा कुलीनता प्राप्त होना असम्भव है तब क्या आत्मिक बल को प्राप्त करने के लिये धन का भरोसा करना ठीक है? यदि केवल शारीरिक कष्टों को सहन करने से ही अपनी भीतरी शक्तियों का बढ़ना सम्भव हो तो रोगी, दुखी, लूले और लंगड़े सभी महात्मा बन जांय, परन्तु प्रत्यक्ष में हम उलटा ही देखते हैं। इससे मानना पड़ेगा कि आत्मिक बल को प्राप्त करने के लिये यदि जड़ साधनों का हम उपयोग कर रहे हैं तो वे झूठे हैं।

यदि मनुष्य वास्तव में आत्मिक बल को खरीदना चाहे तो उसे इसके बदले में उसी जाति की चीजा देनी होगी। यदि वास्तव में हम संयम, सहिष्णुता, धैर्य, सहानुभूति और प्रेम को अपने हृदय में उत्पन्न करना चाहें तो हमें इनके बदले में अपनी मनोवृत्तियों की उच्छृंखलता, स्वार्थ, लम्पटता और मानसिक चपलता से विदा लेनी होगी। लोभी मनुष्य का द्रव्य से चाहे कितना ही प्रेम क्यों न हो, यदि वह अपने शारीरिक आराम को चाहता है तो उसे अपना द्रव्य अवश्य खर्च करना ही पड़ेगा। इसी भांति स्वार्थ का त्याग करने में हमें कितना ही कष्ट क्यों न हो, बिना उससे छुटकारा पाये हम आत्मिक उन्नति प्राप्त नहीं कर सकते। धन का सच्चा उपयोग यही है कि उसके द्वारा मनुष्य जाति को अपनी सुख शान्ति जुटाने में सुविधा हो। वह कृपण, जो लक्ष लक्ष मुद्राओं के रहते भी द्रव्य-प्रेम के कारण आवश्यक सामग्रियों को नहीं जुटाता, निस्संदेह दया का पात्र है। इसी भांति चैतन्य जगत में भी जो व्यक्ति अपनी मानसिक वृत्तियों के बदले में सच्चे सुख और शांति को प्राप्त करने में हिचकता है वह मूढ़ बुद्धि है। प्रकृति ने मनुष्य के हृदय में क्रोध की सृष्टि इसी लिये की है कि उस पर विजय प्राप्त करके क्षमा कर दी जाय। स्वार्थ के वशीभूत होकर मनुष्य दूसरों की सुख सामग्री को छीन छीन कर अपने सुख के लिये एकत्र करता है। दूसरों की उसे जरा भी चिन्ता नहीं रहती। अतएव वह कृपण मनुष्य के सदृश्य अपना द्रव्य अपने ही पास रखना चाहता है, परन्तु धर्म का सिद्धांत इसके विपरीत है। धर्म चाहता है कि मनुष्य अपने सुख का उपभोग स्वतः भी करे और दूसरे मनुष्यों को सुख देने के लिये तत्पर रहे।

वे आत्मिक शक्तियां कौन कौन हैं—जिनकी वृद्धि के लिये हमें प्रयत्न करना चाहिये। दयालुता, मैत्रीभाव, समवेदना, संयम, धैर्य, सत्य, शांति और विश्वव्यापी प्रेम, ये सारे भाव जिस समय मनुष्य के हृदय में पूर्ण-रूप से विकसित हो जाते हैं उसी समय उसकी आत्मा विस्तीर्ण होते होते सारे विश्व में फैल जाती है। यदि इन भावों को प्राप्त करना चाहते हो तो आज ही से अधीरता, क्रोध, निर्दयता, घृणा और स्वार्थ तथा अपनी वृत्तियों को दमन करने का प्रण कर लो। ज्यों ज्यों इनकी मात्रा हृदय से घटती जायगी, त्यों त्यों ही सुख और शांति की मात्रा बढ़ चलेगी।

मथुरा १ अगस्त, सन १९४५ ई०

शक्ति संचय कीजिए !

जीवन एक प्रकार का संग्राम है । इसमें घड़ी घड़ी में विपरीत परिस्थितियों से, कठिनाइयों से, लड़ना पड़ता है । मनुष्य को अपरमित विरोधी तत्वों को पार करते हुए अपनी यात्रा जारी रखनी पड़ती है । दृष्टि उठाकर जिधर भी देखिये उधर ही शत्रुओं से जीवन घिरा हुआ प्रतीत होगा । "दुर्बल, सबलों का आहार है ।" यह एक ऐसा कड़ुआ सत्य है जिसे लाचार होकर स्वीकार करना ही पड़ता है । छोटी मछली को बड़ी मछली खाती है । बड़े वृक्ष अपना पेट भरने के लिये आस पास के असंख्य छोटे छोटे पौधों की खुराक झपट लेता है और वे बेचारे छोटे पौदे मृत्यु के मुख में चले जाते हैं । छोटे कीड़ों को चिड़ियां खा जाती हैं और उन चिड़ियों को बाज आदि बड़ी चिड़ियां मार खाती हैं । गरीब लोग अमीरों द्वारा, दुर्बल बलवानों द्वारा सताये जाते हैं । इन सब बातों पर विचार करते हुए हमें इस निर्णय पर पहुँचना होता है कि यदि सबलों का शिकार होने से, उनके द्वारा नष्ट किये जाने से, अपने को बचाना है तो अपनी दुर्बलता को हटाकर इतनी शक्ति तो कम से कम अवश्य ही संचय करनी चाहिये कि चाहे कोई यों ही चट न कर जावे ।

रोगों के कीटाणु जो इतने छोटे हैं कि आंखों से दिखाई भी नहीं पड़ते, हमारे स्वास्थ्य को नष्ट कर डालने और मार डालने के लिये चुपके चुपके प्रयत्न करते रहते हैं । हमारे शरीर में उन्हें थोड़ी भी जगह मिल जाय तो बड़ी तीव्र गति से वे हमें बीमारी और मृत्यु की ओर खींच ले जाते हैं । जरा सा मच्छड़, मलेरिया का उपहार लिये हुए पीछे फिरा करता है, मक्खियाँ हैजा की भेंट लिये तैयार खड़ी हैं । बिल्ली घर में से खाने पीने की चीजें चट करने के लिए, चूहा कपड़े काट डालने के लिये बन्दर बर्तन उठा ले जाने के लिये तैयार बैठा है । बाजार में निकलिये—दुकानदार खराब माल देने, कम तोलने, दूने पैसे बसूल करने, की घात लगाये बैठा है, गठकटे, ठग, चोर, उचक्के, अपना अपना दाव देख रहे हैं, ढोंगी, मुफ्तखोरे अपना जाल अलग ही बिछा रहे हैं । चोर, गुण्डे, दुष्ट, अकारण ही जलते, दुश्मनी बाँधते और नुकसान पहुंचाने का प्रयत्न करते हैं । हितू सम्बन्धी भी अपने अपने स्वार्थ साधन की प्रधानता से ही आप से हित या अनहित बढ़ाते घटाते रहते हैं ।

चारों ओर मोर्चे बन्दियां बँधी हुई हैं, यदि आप सावधान न रहें, जागरूकता से काम न लें अपने को बलवान् साबित न करें तो निस्सन्देह इतने प्रहार चारों ओर से होने लगेंगे कि उनकी चोटों से अपने को बचाना कठिन हो जायगा । ऐसी दशा में उन्नति करना, आनन्द प्राप्त करना तो दूर, शोषण, अपहरण, चोट और मृत्यु से बचना मुश्किल होगा । अतएव सांसारिक जीवन में प्रवेश करते हुए इस बात को भली प्रकार समझ लेना चाहिए और समझ कर गांठ बांध लेनी चाहिये कि केवल जागरूक और बलवान व्यक्ति ही इस दुनियां

में आनन्द मय जीवन के अधिकारी हैं। जो निर्बल, अकर्मण्य और लापरवाह स्वभाव के हैं वे किसी न किसी प्रकार दूसरों द्वारा चूसे जायँगे और आनन्द से वंचित कर दिये जायँगे। जिन्हें अपने स्वाभाविक अधिकारों की रक्षा करते हुए प्रतिष्ठा के साथ जीने की इच्छा है उन्हें अपने दुश्मनों से सजग रहना होगा, उनसे बचने के लिये बल एकत्रित करना होगा।

जब तक आप अपनी योग्यता नहीं प्रकट करते तब तक लोग अकारण ही आपके रास्ते में रोड़े अटकावेंगे किन्तु जब उन्हें यह मालूम हो जायगा कि आप शक्ति सम्पन्न हैं तो वे जैसे अकारण दुश्मनी ठानते थे वैसे ही अकारण मित्रता भी करेंगे। बीमार के लिये पौष्टिक भोजन विष तुल्य हो जाता है किन्तु स्वस्थ मनुष्य को बल प्रदान करता है। जो सिंह रास्ता चलते सीधे साधे आदमियों को मारकर खा जाता है वही सिंह सरकस मास्टर के आगे दुम हिलाता है और उसकी आज्ञा का पालन करता हुआ, बहुत बड़ी आमदनी कराने का साधन बन जाता है।

अच्छे स्वास्थ वाले को बलवान कहते हैं, परन्तु आज के युग में यह परिभाषा अधूरी है। इस समय शरीर बल, पैसे का बल, बुद्धि का बल, प्रतिष्ठा का बल, साथियों का बल, साहस का बल यह सब मिलकर एक पूर्ण बल बनता है। आज के युग में बलवान वह है जिसके पास उपरोक्त छै बलों में से कई बल हों। आप अपने शरीर को बलवान बनाइये परन्तु साथ साथ अन्य पांच बलों को भी एकत्रित कीजिए। किसीके साथ बेइंसाफी करने में इन बलों का उपयोग करें ऐसा हमारा कथन नहीं है परन्तु जब आपको अकारण सताया जारहा हो तो आत्म रक्षा के लिए यथोचित रीति से इनका प्रयोग भी कीजिए जिससे पशुओं को दुस्साहस न करने की शिक्षा मिले। बलवान बनना पुण्य है क्योंकि इससे दुष्ट लोगों की कुवृत्तियों पर अंकुश लगता है और दूसरे कई दुर्बलों की रक्षा हो जाती है।

आनन्द पुरुषार्थी को प्राप्त होता है। विजय-लक्ष्मी की बरमाला बलवानों के गले में पड़ती है यह बसुन्धरा वीर भोग्या है, उद्योगी पुरुष-सिंहों को ही लक्ष्मी प्राप्त होती है। आनन्द और उल्लास का जीवन भी वीर पुरुष ही प्राप्त करते हैं। निर्बल दुर्बलों को तो इस लोक और परलोक में रोना झीखना, पिसना, पिटना ही हाथ रहता है। इसलिए वास्तविक जीवन, आनन्दमय जीवन, जीने की इच्छा करने वाले हर एक व्यक्ति को शक्तिशाली, बलवान बनना चाहिए।

———

प्रार्थना, याचना नहीं है।

(महात्मा गांधी)

प्रार्थना करना याचना नहीं है। वह तो आत्मा की पुकार है। वह अपनी त्रुटियों को नित्य स्वीकार करना है। हम में से बड़े से बड़े को मृत्यु रोग वृद्धावस्था, दुर्घटना इत्यादि के सामने अपनी तुच्छता का भाव हर दम हुआ करता है। जब अपने मन-सूबे लहमेभर में मिट्टी में मिलाये जा सकते हैं। जब अचानक या पल भर में हमारी खुद हस्ती मिटाई जा सकती है। तब "हमारे मन सूबों" का मूल ही क्या है। लेकिन अगर हम यह कह सकें कि हम तो ईश्वर के निमित्त तथा उसी की रचना अनुसार ही काम करते हैं। तब हम अपने को मेरु की भांति अचल मान सकते हैं। तब तो कुछ फसाद ही नहीं रह सकता है उस हालत में नाशवान कुछ भी नहीं है तथा दृश्य जगत ही नाशवान मालूम होगा। तब लेकिन केवल मत्यु और विनाश सब असत् मालूम होते हैं। क्यों कि मृत्यु या विनाश उस हालत में एक रूपान्तर मात्र हैं। उसी प्रकार जिस प्रकार कि एक शिल्पी अपने चित्र को इससे उत्तम चि[illegible] बनाने के हेतु नष्ट कर देता है। और जिस प्रका[illegible] एक घड़ी साज अच्छी कमानी लगाने के अभिप्राय से रद्दी को फेंक देता है।

———

परमात्मा को अपने भीतर से कार्य करने दीजिए।

(प्रो० रामचरण महेन्द्र एम.ए.डी. लिट. डी डी.)

भलाई एवं पवित्रता का मार्ग पाप और नीचता की अपेक्षा कहीं सरल है। भलाई में जो स्वाद है, पवित्रता में जो आनन्द है वह पाप और नीचता के सरूर से अधिक मजेदार है। भलाई करना पाप करने से ज्यादा आसान है क्यों कि परमात्म-स्वरूप मनुष्य की प्रवृत्ति स्वभावतः पवित्रता की ओर है। पाप और नीचता बड़े अप्राकृतिक हैं। मनुष्य नहीं चाहता कि वह निकृष्टता के पंजे में फँस जाय। उस मार्ग पर चलने में उसे पग पग पर अपनी आत्मा का संहार करना पड़ता है, मन की रुचि पर बलात्कार करना होता है तब कहीं वह पाप कर पाता है।

जो व्यक्ति धूम्रपान का प्रारम्भ करते हैं उन्हें भयंकर खांसी उठती है, नेत्रों में आंसू आ जाते हैं, शरीर में पीड़ा होती है, सर में चक्कर आते है, मुँह में से दुर्गन्ध उठती है। यह सब इसी कारण होता है क्यों कि तम्बाकू अप्राकृतिक है। परमेश्वर नहीं चाहता कि हम वह कार्य करें। प्रकृति का सहयोग उसमें नहीं है। केवल हमारी अनाधिकार चेष्टा ही उन दिव्य शक्तियों के विरुद्ध युद्ध करती है।

इसी प्रकार पाप एवं नीचता का प्रारम्भ करने में हमारे अन्तकरण में भयंकर विक्षोभ होता है, आत्म ग्लानि तथा क्लेश उत्पन्न होता है, मन किसी अज्ञात भय से थर थर कांपता है, हमारे दुष्कृत्य में साथ नहीं देना चाहता, हमारा शरीर स्वभाविक गति से उस ओर नहीं चलता। अड़ियल घोड़े की तरह वह स्थान स्थान पर अटकता है और उस मार्ग पर नहीं चलना चाहता। हमारे संकल्प, हमारी धारणाएँ, हमारी वृत्तिएँ सब ही जवाब दे देते हैं। अपने मन पर अत्याचार करते हुए हम पाप में प्रवृत्त होते हैं। बार बार उसी की आवृत्ति करते रहने से हमारी पवित्र आकांक्षाएँ मृतप्रायः हो जाती हैं। जिस प्रकार जानते बूझते हम अफ़ीम, शराब, तम्बाकू तथा अनेकों विषैले पदार्थों के अभ्यस्त हो जाते हैं तथा हमें उनकी कडुवाहट भी प्रतीति नहीं होती, उसी प्रकार अभ्यस्त हो जाने पर हमें पाप और नीचता करते हुए ग्लानि का अनुभव नहीं होता। कालान्तर में हम पक्के पापी (Hardened) हो जाते हैं।

परमात्मा को अपने अन्दर से कार्य करने दीजिये। आदिप्रभु की जो इच्छा है उसी के अनुसार चलने के लिये अपने आप को विवश कीजिए। परमात्मा को स्वयं अपनी मर्जी के अनुसार चलने को मजबूर न कीजिए। तुम्हारी इच्छा व परमात्मा की इच्छा एक होनी चाहिए। तुम वही सर्व शक्तिमान परमात्मा हो जिसने तमाम जगत् को अपनी पवित्रता प्रदान की है और अणु अणु में वही उत्कृष्ट तत्त्व ओत-प्रोत कर दिया है जो सत्य है, सुन्दर है तथा सर्वत्र शिव है।

आत्म निरीक्षण द्वारा मालूम कीजिए कि कितने अंशों में तुम ईश्वरेच्छा के अनुगामी बने हो? तुम्हारे कितने कार्य परमात्मा के लिए होते हैं? कितनी देर तुम "स्व" की पूर्ति में व्यतीत करते हो? कितनी देर तुम पूजा आराधना में लगाते हो?

तुम्हारे विभिन्न अंगों का क्या अभिप्राय है? वे किस आशय से बनाये गए हैं? तुम्हारे नेत्रों का कार्य पवित्र से पवित्र वस्तुओं का दर्शन होना चाहिए। तुम कुरुपता में भी भव्यता ढूढ़ निकालो। प्रतिकूलता में भी सहायक तत्त्वों के दर्शन करते रहो। कठिन से कठिन और विषम से विषम परि-स्थिति में भी विचलित न हो। तुम्हारे पाँव तीव्र आँधी पानी में भी स्थिर रहें। तुम्हारे हृदय में

पवित्रता की गर्मी हो। शरीर में उत्साह हो। परमेश्वर का तेज अंग प्रत्यंग से झलकता रहे।

आत्म बन्धुओ ! हमारा इस संसार से कोई सम्बन्ध नहीं है। हम सत् चित आनन्द विशुद्ध परमपदार्थ—आत्मा हैं। संसार और सांसारिक सम्बन्ध खिलौने मात्र हैं। अक्सर हम कहा करते हैं कि अमुक व्यक्ति हमारा शत्रु है, अमुक हमारा मित्र है, अमुक हमारा पिता है, अमुक पुत्र है किन्तु वास्तव में न कोई शत्रु है न मित्र न पिता न पुत्र। हम सब साक्षात परमब्रह्म पदार्थ हैं। हमारा संसार के क्षुद्र झगड़ों से कोई सम्बन्ध नहीं है। सुख दुःख छाया तथा उजेला है जो आता जाता रहता है उससे हमारी आन्तरिक शान्ति भंग नहीं होनी चाहिए। हम संसार से बहुत ऊँचे हैं।

जैसे वायुयान में बैठ कर आकाश में विहार करने से संसार की प्रत्येक वस्तु घरबार, मनुष्य, पशु, वृक्षादि छोटे छोटे प्रतीत होते हैं। उसी प्रकार आत्म-स्वरूप का प्रकाश करने वाले साधक को सांसारिक पदार्थ मिथ्या प्रतीत होते हैं। वह उनसे बहुत ऊँचा उठ जाता है। माया मोह के चक्र में नहीं फँसता। उसे दिव्य ज्ञान वह प्रकाश प्रदान करता है जिसकी रोशनी में उसे भव्यता, पवित्रता तथा वास्तविक सत्यता के दर्शन होते हैं।

आप संसार के साथ जुदा ही रह कर आत्म ज्योति का प्रकाश कर सकें—ऐसी बात नहीं है। संसार के थपेड़े सह कर भी आप भली भांति दिव्यता प्राप्त कर सकते हैं। घर गृहस्थ के अनेक उत्तर दायित्वों का पालन करते हुए भी आप सहर्ष अपने भीतर से परमात्म तत्व को प्रकाशित कर सकते हैं।

आप यह मान कर प्रत्येक कार्य कीजिए कि आप परमात्मा हैं। उसी के एक अंग हैं। आपने ज्ञान, सत्य, प्रेम भरा पड़ा है और आप नित्य प्रति के जीवन में उन्हीं तत्त्वों का प्रकाश कर रहे हैं। आप सर्वत्र प्रेम, दिव्यता, एवं शान्ति का ही दर्शन करते हैं। आपकी दृष्टि केवल भव्य तत्त्वों के चिंतन में ही लगती है। आप पवित्र शब्दों का ही उच्चारण करते हैं और मनोमंदिर में सदा सर्वदा पवित्र संकल्पों को ही स्थान देते हैं।

आप का लक्ष्य एवं आदर्श जितना दिव्य होगा, उतनी ही आपको ईश्वरीय प्रेरणा प्राप्त होगी। जो गुण आपमें नहीं हैं उन्हें अपने अन्दर मान लीजिए। फिर उन्हीं के अनुरूप आचरण कीजिए। कालान्तर में वे ही शुभ तत्त्व आपमें प्रकट होंगे। आप अपने को दीन हीन पापी नहीं, परम पवित्र निर्विकार आत्मा मानिये।

सच्चा पुरुष कौन है ?

(लेखिका—कुमारी कैलाश वर्मा)

केवल भाग्य पर विश्वास करने वाला व्यक्ति मूर्ख है, और अकेले पुषार्थ की डींग हांकने वाला आदमी दम्भी और अभिमानी है। भाग्यवादी यही कहा करते हैं कि सब अपने भाग्य से ही होता है—जैसा दैव करता है। मनुष्य में सामर्थ्य नहीं कि कुछ भी परिवर्तन कर सके। इसी प्रकार भिन्न भिन्न देश के कर्म वादियों का कथन है कि जो कुछ होता है वह अपने कर्म से होता है कर्म की गति अपरम्पार है, अनिवार्य है।

क्या भाग्यवाद एवं कर्मवाद इस रूप में सत्य हैं ? यदि ऐसा है तब तो मनुष्य दैव के हाथ में एक कठ पुतला है जो सर्वथा परतंत्र है और वही नाच नाचता है जो दैव नचाता है और जिसकी गति का एक सीमा है।

परन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं है। पुरुषार्थ द्वारा मनुष्य भाग्य का निर्माण करे, "पुरुष" नाम को सार्थक बनावे किन्तु साथ साथ जगत नियामक की सत्ता के नियमों पर श्रद्धा रक्खे, आत्मा का विकास होने दे, वही सच्चा पुरुष है। ऐसा पुरुष उत्पन्न करने की प्रथा का नाम आध्यात्म शिक्षा है।

पूरा और खरा काम ।

(श्रीमती लिली एल० एलन)

उच्च आदर्शों वाला एक दृढ़ आदमी हमेशा एक खरे आदमी के समान काम करता है. एक किराये पर रक्खे हुए आदमी के समान नहीं । चाहे वह दिमागी-मस्तिष्क का-काम करे या हाथ का काम करे, उसका काम उसके जीवन का अंश होता है। वह अपनी कला की अच्छाई को मजदूरी के पैसों या रुपयों से मापकर खराब न करेगा। मुझे इतने पैसे मिलते हैं, वैसा ही मुझे काम करना चाहिये, इस विचार से प्रेरित होकर वह कभी अपनी कारीगरी में बट्टा न लगायगा। एक दिन का काम उसके लिये बहुत ही आवश्यक और मूल्यवान वस्तु है और इसे वह इस ख्याल से कि क्यों कुछ पैसों के वास्ते अपने पुरुषत्व की महती शक्ति खराब की जाय, श्रेष्ठ से कम दरजे का न करेगा। उसे अपनी उन्नति के लिए न तो किसी स्कीम को तय्यार करने की आवश्यकता है और न अपने वेतन को बढ़वाने के लिए किसीसे कुछ कहने की । यहाँ भी फिर वही नियम काम करता है कि जो आदमी योग्यता रखता है, उसे पुरुस्कार अवश्य मिलना चाहिए।

पूरे और खरे काम के सामने सबको झुकना पड़ता है। जो छोटे से छोटा काम निकम्मा रद्दी अथवा अधूरा किया जा सकता है, वही परमात्मा की सेवा या अपना कर्तव्य समझ कर सारे चातुर्य्य तथा कला से अच्छी तरह भी किया जा सकता है।

किसी भी स्त्री या पुरुष के वास्ते इससे अधिक लज्जा और गिरावट की बात क्या होगी कि उसे एक काम को दुबारा करने के वास्ते इस लिये कहा जाय कि उसने अपना काम ठीक तौर से नहीं किया है, अधूरा किया है।

जिस ढंग से कोई काम किया जाता है वह ढंग ही काम करने वाले आदमी के चरित्र को प्रकट करता है, फिर चाहे वह काम कुछ भी क्यों न हो।

जो आदमी व्यक्तित्व प्राप्त करने की इच्छा करता है, उसे कभी किसी काम को अधूरा और रद्दी न करना चाहिये। उसका लक्ष्य अपने काम के हर एक भाग को पूर्ण रूप से करना ही होना चाहिये। वह आदमी चाहे किसी भी परिस्थिति में काम क्यों न कर रहा हो उसका पथ प्रदर्शक नीति वाक्य यही होना चाहिये कि 'खरा और पूरा काम करो'।

जो आदमी अपने मालिक की उपस्थिति में, उसकी हाज़िरी में तो काम को लगन के साथ करता है, किन्तु मालिक के पीठ फेरते ही सुस्ती से काम को भद्दा या मामूली करना आरम्भ कर देता है, वह न किसी शक्ति को प्राप्त करता है और न प्रभुत्व को पाता है, ऐसा आदमी इस प्रकार के व्यवहार से अपने लिये एक ऐसी अवस्था पैदा कर लेता है जो उसे अपने भविष्य पर ज़रा सा भी विचार करने पर भयभीत कर देगी।

क्या हम अपने लिये अच्छी अवस्थाओं की इच्छा करते हैं? क्या हम अपने आस पास की परिस्थितियों को पहले से अधिक रोचक तथा सुन्दर देखना चाहते हैं? क्या हम किसी ऐसे उच्च पद को प्राप्त करने की इच्छा करते हैं जिससे कि हमारा जीवन उच्च तथा विशाल बन जाय? यदि हम ये बातें चाहते हैं, तो हमें अभी से उनके लिए काम करना चाहिये और अपने आपको उस हालत के योग्य बनाना आरम्भ कर देना चाहिए। हमें अपने जीवन को इतना वास्तविक, इतना पूर्ण, इतना परिश्रमी और इतना ईमानदार बना देना चाहिये कि जिससे हमारा भविष्य, जो कि वर्तमान में ही बन रहा है, कार्य और कारण के सम्बन्ध सूचक नियम के अनुसार हमारे लिये वे सब वस्तुएं लाये, जिनकी हम इच्छा करते हैं। ——

पशुता बनाम वीरता।

(काका कालेलकर)

लोक-व्यवहार में भी वीर रस एक सीमा तक कार्यत्व की अपेक्षा तो रखता ही है। पशुओं में जोश होता है, पर वीर्य नहीं होता। जब वे जोश में आकर आपे से बाहर होते हैं, तो आपस में अंधा धुंध लड़ पड़ते हैं, यही उनकी पशुता है। पर कहीं जरा सा भी भय का संचार उन में हुआ कि अपनी दुम दबाकर भागने में उन्हें देर नहीं लगती और भय की लज्जा का भाव तो वे जानते ही नहीं। भय की लज्जा तो आत्मा का गुण है। जानवरों में जिसका विकास नहीं होता। आवेश हो या न हो, लेकिन तीव्र-कर्तव्य बुद्धि के कारण अथवा आर्यत्व के विकसित होने से मनुष्य भय पर विजय पा लेता है। आलस्य, सुखोपभोग, भय, स्वार्थ—इन सब का त्याग करके देह-रक्षा की चिन्ता से निर्मुक्त हो, जब मनुष्य अपना बलिदान करने के लिये तैयार हो जाता है तभी वह जड़ के ऊपर अपनी देह पर विजय पाकर आत्म गुणों का उत्कर्ष स्थापित करता है। ऐसा वीर-कर्म ऐसी वीर-वृत्ति देखने वाले या सुनने वाले के हृदय में वीर भाव जागृत करता है, और इसीमें वीर रस का आकर्षण और उसकी सफलता है।

हमारे पास कोई रक्षक वीर पुरुष है, इसलिये हम बेफिक्र हैं, सही सलामत हैं, भय का कोई कारण नहीं, इस तरह की तसल्ली दुर्बलों और अबलाओं को होती है। जिसे कुछ वीर रस का सर्वोच्च परिणाम नहीं कह सकते।

वीररस की कद्र वीर करें, यह एक बात है और शरणागत जन करें, यह दूसरी बात है। जो वीर है वह वीर रस को हमेशा विशुद्ध और आर्योचित रखने की चेष्टा करता है। आश्रय परायण व्यक्ति के अपनी प्राण रक्षा के लिये आतुर होने के कारण उसमें आर्य-अनार्यवृत्ति का विवेक नहीं रहता। अपने रक्षक के प्रति 'नाथनिष्ठा' रख कर उसके तमाम गुण दोषों को समान भाव से वह उज्ज्वल ही देखता है।

जब पीठ फेरना असम्भव हो जाता है, तब आत्मरक्षा की वृत्ति वीर-वृत्ति की सहायक बन जाती है। जिसे अपनी जान ज्यादा प्यारी होती है वही इस मौके पर अधिक शूर बन जाता है। परन्तु जब कोई मनुष्य पानी में डूब रहा हो अथवा जलते हुए घर के अंदर से किसी असहाय बालक के चीखने की आवाज सुनाई पड़ रही हो, उस समय अपने बचाव की, जीवन की जोखिम की जरा भी परवाह न करते हुए कोई भी तेजस्वी पुरुष अपने हृदय धर्म का वफादार बनकर पानी में या धधकती हुई आग में कूद पड़ता है, तब वह अपनी वीर-वृत्ति का परम उत्कर्ष प्रकट करता है। मांफी मांगकर जीने की अपेक्षा फाँसी पर चढ़ जाना मनुष्य ज्यादा पसंद करता है। करोड़ों रुपये के लालच के वश में न होकर केवल न्याय बुद्धि को जो मनुष्य पहचानता है वह भी अपने अलौकिक वीरत्व का परिचय देता है। जिसे दुनिया चाहे जो कहे, पर अन्तरात्मा की आवाज को बे-वफा नहीं होने दूंगा। ऐसी वीर वृत्ति जिस मनुष्य में स्वभाव से होती है वह धीरेश्वर है।

किसी बहू बेटी या स्त्री का अपहरण करते समय भी कई एक बदमाश गुण्डे विकार के वश होकर अपनी असाधारण बहादुरी व्यक्त करते हैं। बड़े २ डाकू भी अपनी जान हथेली पर रखकर घरों में सेंध लगाते हैं अथवा लूटमार मचाते हैं, और जब पकड़े जाते हैं, पुलिस भले ही उन्हें प्राणान्त कष्ट पहुँचावे, वे अपने षड्यंत्र का भेद नहीं बतलाते। उनकी यह शक्ति हमें चकित जरूर कर सकती है, पर शरीफ लोगों का धन हरण या पर स्त्री का अपहरण करने की नीचातिनीच पशु वृत्ति से प्रेरित बहादुरी को कोई आर्य पुरुष कद्र नहीं करसकता। ——

सूर्योःदेवता ।

(श्री विट्ठलदास मोदी, संचालक, आरोग्य मन्दिर गोरखपुर)

प्रातःकाल अँगड़ाई लेते हुए आदिम पुरुष ने जब प्रकृति पर नज़र डाली तो उसने देखा कि पक्षीगण स्वागत गान गा रहे हैं, पशु दौड़ दौड़कर किसी के आने की खुशियाँ मना रहे हैं और तरुगण रास्ता देने को श्रद्धापूर्वक सिर झुकाये खड़े हैं नज़र दौड़ाई तो पूर्व दिशा की ओर उसने उदित होते हुये बाल रवि को देखा उसके तेज और सौन्दर्य ने उसे अभिभूत कर लिया। सूर्य रश्मियों का उसके शरीर पर एक स्फुरणकारी प्रभाव पड़ा। हृदयगत सारी भावनाओं को उड़ेल कर वह बोल उठा "सूर्योःदेवता"।

हज़ारों वर्षों से वेद के इस मंत्र खंड को लाखों नर नारी नित्य सायं प्रातः गाते आये हैं। यह इतना गाया गया है कि आज इसका अर्थ समझना भी कठिन हो गया है। भावना का स्थान मश्क ने ले लिया है। आज तो जब कहीं हम 'सूर्योःदेवता' सुनते हैं तो यह मंत्र अपने को मोटे मोटे कपड़ों से ढके रखने की हमारी आदत, सूर्य प्रकाश से हमें छिपाये रहने वाले हमारे महल एवं अट्टालिकाओं पर व्यंग करता ही जान पड़ता है।

पर वैज्ञानिक उन्नति के साथ साथ सूर्य प्रकाश एवं स्वास्थ्य के संबंध को अधिकाधिक समझा जाने लगा है। आधुनिक युग में रोग छुड़ाने के लिये सूर्य रश्मियों का प्रयोग पहले पहल डेनमार्क निवासी डा. एन. आर. फिनसेन ने सन् १८९३ ई. में किया था। इसके दस वर्ष बाद स्विटजर लैंड में डाक्टर रोलियर ने यक्ष्मा के रोगियों के लिये पहली धूप शाला खोली। उनके लिये किये गये प्रयोगों के परिणाम को देखकर तो धूप की रोग नाशक शक्ति का कायल सारा चिकित्सा संसार हो गया है।

प्रायः उन सभी लोगों का, जिन्होंने धूप की रोग नाशक शक्ति के संबंध में अनुसंधान किये हैं, कहना है कि सूर्य किरण में पाई जाने वाली अल्ट्रावायलेट किरणें ही मनुष्य के विशेष काम की हैं। अधिक तादाद में अल्ट्रावायलेट किरणें उपजाने वाली मशीनें भी बना ली गई हैं पर देखा गया है कि इन मशीनों द्वारा प्राप्त किरणें उतनी लाभदायक नहीं होतीं जितनी सूर्य की किरणें। ऐसी भी मशीनें बनी हैं जो अल्ट्रावायलेट किरणें बिल्कुल ही नहीं देतीं वे केवल इन्फ्रा रेड किरण डालकर रोगों पर अपना प्रभाव दिखाती हैं। घर में इस्तेमाल किये जाने वाले साधारण बल्ब में भी यदि कुछ खास तौर के रिफ्लेक्टर लगा दिये जायें तो उनके प्रकाश में भी कुछ न कुछ औषधागुण अवश्य उत्पन्न हो जायगा यद्यपि उनमें न अल्ट्रावायलेट किरणें होती हैं न इन्फ्रा रेड। इससे यह साबित होता है कि सूर्य की किसी भी अकेली किरण में चाहें वह सूर्य से ली जाय या किसी मशीन से पैदा की जाय वह प्रभाव नहीं होता जो सूर्य की सीधी इकट्ठी किरणों में।

अब किसी ऐसे व्यक्ति के शरीर पर ध्यान दीजिये जिसे अधिकतर धूप में रहना पड़ता है। उसकी तपे ताँबे की सी देह को उनकी देह से मिलाइये जो कपड़ों छातों और ऊँचे ऊँचे घरों की सहायता से अपने को धूप से दूर रखते हैं। पीली मुर्झाई निस्तेज त्वचा में न तो ठंडक गरमी बर्दाश्त करने की ताकत होती है और न रक्त की गंदगी को पसीने के रूप में बाहर निकाल डालने की शक्ति।

यह आवश्यक नहीं है कि हर समय धूप में ही रहा जाय। ऐसे अवसर का उपयोग अवश्य किया जाय जब दिन भर बाहर रहने का मौका मिले। पर दस पंद्रह मिनट रोज तो धूप ली ही जाय। इसके लिये खुले बदन धूप में लेटना चाहिये। केवल सिर ढका रहे। जो लोग देर से स्नान करते हैं वे धूप लेने के बाद स्नान करें तो उनके चर्म रोग होने की कभी संभावना ही न रहे।

धूप लेने के बाद यदि स्नान न किया जाय सके तो सारे बदन को गीले कपड़े से अवश्य ही पोंछ डालना चाहिये।

भोजन शास्त्री जब गरीबों के लिये भोजन बताने लगते हैं तो वे इस चक्कर में पड़ जाते हैं कि विटामिन डी. उनके भोजन में किस प्रकार दी जाय। दूध मक्खन क्रीम अंडे से दूर उनकी नजर नहीं जा पाती। यह काम धूप से पूरी तौर से लिया जा सकता है। धूप को गरीबों का दूध, मक्खन, क्रीम ही समझिये।

हमारे स्कूलों में बच्चों को पांचवें दर्जे से हाइजीन पढ़ाई जाती है और यह पढ़ाई आठवें दर्जे तक जारी रहती है। बच्चे उसे किताबों में पढ़ते हैं अध्यापक किताबों से पढ़ाते हैं। अध्ययन एवं शिक्षण, ज्ञान के लिये होता है व्यवहार के लिये नहीं। यदि केवल धूप लेने की बात भी लोगों के गले उतर जाय तो हमारी पौध बढ़ जाय और यक्ष्मा की बढ़ती ही न रुक जाय बल्कि उसकी जड़ भी कट जाय।

———

चहरे की प्रसन्नता एक ताली है जो दूसरों के हृदय का दरवाजा आपके लिए खोल देती है।

× × ×

फसल को नष्ट करने से पहले ओले स्वयं नष्ट हो जाते हैं इसी प्रकार दूसरों को सताने वाले अत्याचारी सफल मनोरथ होने से पहले स्वयं मिटजाते हैं।

× × ×

तिनके पानी के ऊपर तैरते फिरते हैं परन्तु मोती प्राप्त करने के लिए समुद्र की तली तलाश करनी पड़ती है। इसी प्रकार ओछे मनुष्य का संग तो चाहे जहां मिल जाता है पर सत्पुरुषों की ढूँढ़ खोज करनी पड़ती है।

× × ×

साधक के लक्षण।

(ले० श्री रामशरणजी "व्यास")

———

जिन मनुष्यों की बासनाएं शांत हो गई हैं, उनके मन मन्दिर में आठोंयाम प्रेम ज्योति प्रज्ज्वलित है। वे इंद्रियों के दास नहीं, इंद्रियाँ स्वयम् उनकी दासता में रहती हैं। सांसारिक प्रपंच किसे कहते हैं, इससे उन्हें कोई प्रयोजन नहीं। वे समय पर धर्म की वेदी पर प्राण न्यौछावर करने के लिए तत्पर रहते हैं और धर्म संस्थापन के लिये ही जीवित हैं। सरलता, नम्रता, सहनशीलता सम्प्रीति ही उनके जीवन के मुख्य साधन हैं। उनमें अहं भाव का नाम-मात्र भी नहीं होता। ऐसे मनुष्य सत्य की शीतल छाया में जीवन व्यतीत करते हैं। जिन मनुष्यों ने परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया है। ऐसे मनुष्यों का अंतःकरण पूर्ण-चन्द्र की किरणों की भांति उज्ज्वल बना रहता है, आत्मा गंगाजल के समान निर्मल हो जाती है। अबलाओं की लाज रखने के लिए अपने प्राणों को आहुति दे देना उनके लिये बच्चों का सा एक खेल होता है।

भाग्य शाली हैं वे मनुष्य, जिनके रोम-रोम में, स्वांस स्वांस में सर्वव्यापी भगवान विद्यमान हैं। उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य भगवत्प्राप्ति ही है। श्रद्धालु मनुष्यों की दृष्टि से वे दूर कब हैं? उन्हें हर रूप में परमात्मा का ही अनुभव होता है। वे भयंकर रूपधारी मायावी जीवों से निर्भीक रहते हैं। किसी जीवधारी को कष्ट पहुँचाना तो नीचे मनुष्यों का तुच्छ विचार होता है। वह तो अपने प्रतिद्वन्दियों के प्रति भी सद्विचार रखते हैं। ऐसे ही मनुष्यों ने जीते जी परमात्मा को पा लिया है। ऐसे आत्म साधना के साधक धन्य हैं।

———

परमात्म-दृष्टि से दुःख निवारण ।

(ले० श्री डी० दुर्गाशंकर नागर संपादक 'कल्पवृक्ष')

जगत् में जो कुछ दृष्टिगोचर हो रहा है वह वास्तव में हमारी दृष्टि के अनुरूप ही है। जैसी प्रकृति है, जैसा मन है उसीके अनुसार मन की रचना संसार में दिखाई देती है।

हमारे जीवन में कभी कभी ऐसे प्रसंग आते हैं कि उस समय हमें कुछ अच्छा नहीं लगता, अन्तः-करण बड़ा व्याकुल हो जाता है। कुछ सूझ नहीं पड़ता। कहां जाना, क्या करना, किस से सलाह लेना, किसी से कुछ कहा नहीं जाता। इस स्थिति के लिये किसे दोषी ठहराएें ? इसका कारण केवल हमारी दृष्टि ही है।

जब हम संसार को प्रतिकूल दृष्टि से देखते हैं तो उस समय संसार में प्रत्येक वस्तु हमें प्रतिकूल ही नजर आती है। जब हम अंधेरे में बैठे हुए हैं तो में सब दूर अंधकार ही अंधकार दिखाई देता है, रन्तु जब हम प्रकाश में आते हैं और निरन्तर काश में ही रहते हैं तो हमें प्रत्येक वस्तु ठीक प्रकार दिखाई देती है।

अपने दृष्टि बिन्दु को बदलो और शान्त हृदय से विचार करो। संसार और संसार के पदार्थ अपने स्वभाव को छोड़कर तुम्हारी इच्छानुकूल नहीं बदल सकते। तुम अपने मन को अनुकूल दृष्टिवाला बनाओ और जब तुम्हारा मन सुखमय स्थिति में होगा तो प्राणी-मात्र से और संसार के पदार्थ-मात्र से तुम्हें सुख मालूम होने लगेगा।

जब तक तुम अपनी परमात्म-दृष्टि नहीं बनाओगे तबतक संसार के दुःखों से छुटकारा पाना असम्भव है। परमात्म-दृष्टि बनाने से ही सर्व कष्टों की निवृत्ति हो सकती है।

हम रात-दिन ऐसे परेशान और व्याकुल रहते हैं मानो सारे संसार का ठेका हमने ही ले लिया है। सहनशीलता का नाम-निशान नहीं, संतोष का पता नहीं जरा-जरासी बातों से बिगड़ जाना, आग-बबूला हो जाना और जीवन को भाररूप समझकर सदैव दुःखी रहना, क्या यही हमारे जीवन का स्वरूप है ?

संसार की दशा तो इस प्रकार ही रहती आई है और रहेगी। यदि संसार में अप्रिय घटनाएें होती हैं तो उनसे दूर भागने की चेष्टा न करो और न घबराओ। हृदय में धैर्य रखो। साहस के साथ उनका सामना करो। अपनी दृष्टि में परिवर्तन करो और प्रयत्न करो कि तुम किस प्रकार शान्त रह सकते हो।

बाहरी जगत् में फेर-फार करने के पूर्व प्रथम अपने अन्तरात्मा में परिवर्तन करो। कैसा ही विकट प्रसंग हो, शान्त हो जाओ और नेत्र मूंदकर अपने अन्तर में गहरे उतरो। बाहरी जगत् के तूफान को भूल जाओ। अपूर्व शान्ति में विलीन हो जाओ और तुम्हें क्या करना चाहिये—इसका उत्तर तुम्हारे अन्तर से तुम्हें प्राप्त होगा।

जो कुछ तुम और जगह ढूंढ़ रहे हो वह तुम में ही है। तुम्हारा हृदय परमात्मा का सच्चा मन्दिर है। हृदय केन्द्र है। जब हमारे ध्यान की वृत्ति इस पर केन्द्रित होती है तो समस्त मलीनता दूर हो जाती है और नीच मानसिक विकार वहां प्रवेश नहीं कर सकते और हृदय उत्तेजित नहीं हो सकता। यही परमात्मा का गुप्त प्रदेश है और इसी हृद्देश में चित्त को संलग्न करने से परमात्म-दृष्टि की प्राप्ति होती है। जब इस प्रकार तुम यथार्थ दृष्टि प्राप्त कर लोगे तो प्रतिकूल वातावरण पर शासन कर सकोगे और जीवन को सुखमय बना सकोगे।

परमात्मा की अखण्ड ज्योति

(ले० – योगी अरविन्द)

———

यह आदि और अंत रहित ब्रह्म अखंड है। इसके खण्ड नहीं हो सकता। इस अवनीतल की समस्त वस्तुएं इसी ब्रह्म की योजना से पूर्ण हैं अनन्त कोटि ब्रह्मांड भी इसी ब्रह्म के द्वारा प्रकाशित है। इस विश्व के समस्त तथा प्रत्येक पदार्थों में व्याप्त रहने पर भी इसकी पूर्णता में किसी प्रकार का अंतर नहीं आने पाता क्योंकि वह सदा और सर्वदा परिपूर्ण है पूर्णता ही उसका प्राकृतिक गुण और स्वभाव है।

यह परमेश्वर पूर्ण है बल्कि पूर्ण से भी पूर्ण है। इसलिये जिस वस्तु में इस पूर्ण का पूर्णरूप से समावेश होगा वह सदा पूर्ण रहेगा इस भ वको अन्तर्गत करके केवल चैतन्य पदार्थों में ही नारायण शिव तथा शक्ति का ज्ञान प्राप्त करना होगा, यह बात नहीं है, बल्कि इस संसार की सभी जड़ वस्तुओं में भी श्री भगवान की उपस्थिति की भावना करनी होगी। पर हमारी जड़ चक्षु अवनीतल को अंगुल अंगुल खोज डालने पर भी ब्रह्म का दर्शन नहीं कर पातीं। अन्धों की भांति केवल भगवान की रट लगाने से तो कई जन्म में भी भगवान का दर्शन नहीं हो सकता। जिस दिन स्वर्ग की पवित्र तेजमय किरण से हमारी बुद्धि प्रकाश प्राप्त कर माया के अंधकार से निकल भागेगी, जिस दिन ज्ञानरूपी सूर्य के प्रकाश से हमारे मन की शंकायें और भ्रम दूर होजायेंगे उसी दिन हम धन्य तथा कृतकृत्य हो जांयगे। उस दिन संसार को मोहित करने वाला सत् चित आनन्द मय भगवान का रूप देखकर, उसके दर्शन करके हम धन्य होंगे।

जब तक इस दिव्य चक्षु का उद्घाटन नहीं होता, अर्थात् जब तक यह दिव्य नेत्र नहीं खुलते तब तक साधन निष्फल और निष्प्रयोजन है, केवल माया जाल है और जिस दिन यह ज्ञान चक्षु खुल जायेंगे उस दिन प्रतीत होगा कि इस संसार में कोई भी पदार्थ अचेतन नहीं है संसार की सभी वस्तुओं में सच्चिदानंद परमेश्वर का निवास है। सबों के अंतर्गत, प्राण, चेतना, मन तथा विज्ञान अधिष्ठित हैं, सब वस्तु के बीच में लीलामय श्रीहरि निवास करके अपने अनंत गुणों का अपार आनंद उपभोग करते हैं। संसार की सभी व्यक्त. अव्यक्त अथवा प्रकाशोन्मुख वस्तु में जिसके बीच में परात्पर पुरुष पूर्ण रूप से अव्यक्त रूपेण विद्यमान हैं, अथवा जिसके प्रकाश में चैतन्य का कोई भी रूप देखने में नहीं आता. दिव्य चक्षु प्राप्त होजाने पर उसके बीच में श्री आनन्द स्वरूप भगवान की दिव्य लीला देखने को मिलेगी। पत्र, पुष्प, पत्थर, मिट्टी पेड़, पौधा–इन सभी वस्तुओं की रचना में विशेष विशेष प्रकार आनंद है। उस आनन्द का आभास उसकी रचना चातुरी से प्रकट होता है। प्रत्येक वस्तु के अन्तर्गत श्री हरिचित रूप से विराजमान होकर भिन्न रसों का उपभोग कर आनन्द लेते हैं। पर एक ही ब्रह्म का अनन्त रूप से अनेक वस्तुओं में निवास देखकर कभी भी इस बात की कल्पना नहीं करनी चाहिये कि ब्रह्म-खंड है, वह विभक्त होकर आंशिक रूप से इन नाना विधि वस्तुओं में विराजमान है। भगवान द्विधा या विभक्त नहीं हो सकता। काल स्थान अथवा समय का उस पर किसी तरह का प्रभाव नहीं पड़ सकता। अभेद्य अखंड होकर ही वह संसार की सभी वस्तुओं में समभाव से विराजमान होकर लीला करता है।

———

कठिन परिश्रम और एकनिष्ठा यह दो तपस्यायें ऐसी हैं जिनको करने वाले अपनी मनोवाञ्छा पूरा होने का वरदान प्राप्त कर लेते हैं।

× × ×

असली दुश्मन को पकड़ो।

(श्री स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक)

जीवन एक संग्रम है—वह संग्राम जिसमें परास्त होने वाले अधिक हैं, और जीतने वाले थोड़े। वेही विजयी होते हैं जो अपने इर्द गिर्द की दिशाओं को वश में कर प्राकृतिक नियमों के अनुसार अपने जीवन को बनाते हैं। वेही सर्व श्रेष्ठ और सत्तमप्राणी हैं।

प्रत्येक वर्ष के आरम्भ में हजारों कलियां निकलती हैं, उनमें से बहुत थोड़ी सुन्दर विकसित फूलों की दशा में आती हैं, पश्चात् उनमें से थोड़ी ही निर्दोष पुष्प बनती हैं, और उन पुष्पों में से थोड़े परिपक्व फलों की अवस्था तक पहुंचते हैं, इसी प्रकार पक्षी हजारों अंडे देते हैं, परन्तु उनमें से थोड़े ही बच्चे अंडों से बाहर निकल कर, प्रौढ़ावस्था ग्रहण करते हैं। इस पृथ्वी पर करोड़ों स्त्री पुरुष निवास करते हैं, उनमें से थोड़ी संख्या ही ऐसी सन्तान उत्पन्न करती है जो बीज रूप होकर निरंतर सन्तति की वृद्धि कर सके। करोड़ों बालक संसार में उत्पन्न होते हैं। उनमें से अधिकांश कमज़ोर, निर्बल, दुर्व्यसनी और पतितावस्था में जीवन व्यतीत कर मिट्टी में मिल जाते हैं और दुनियां उनका नाम भी नहीं जानती।

यहां पर प्रश्न यह होता है कि सत्तमता और योग्यता को कसौटी क्या है? हम कैसे जान सकें कि अमुक स्त्री या पुरुष के रजवीर्य में विजेताओं की नस्ल उत्पन्न करने की योग्यता है या केवल अयोग्यों ही संख्या-वृद्धि करने में समर्थ हैं? जीवत संग्राम के इस भयंकर युद्ध में कौन विजयी हो सकता है? यही एक प्रश्न है।

इन प्रश्नों का यदि हम थोड़े शब्दों में उत्तर दें तो हम कह सकते हैं कि विजयी वह है जिसने अपने ऊपर विजय लाभ की है। काम क्रोध, मोह, लोभ, और अहंकार भयंकर गर्जना करते हुए हम सबको निगल जाने की चेष्टा में रहते हैं। मनुष्य जीवन के नाशक ये शत्रु अन्दर से ही अपना नाशकारी कार्य करते हैं, बाहर से नहीं। इसलिये हमें इन अन्दर के शत्रुओं पर विजय लाभ करनी है।

अब यह स्पष्ट है कि हमारा असली शत्रु वह मनुष्य नहीं जो तलवार, बन्दूक, लकड़ी या गोलियों से हम पर हमला करता है, असली शत्रु वह नहीं है जो ईर्षा द्वेश वश अपने विषैले शब्दों से हम पर चोट करता है। यह बाहर के धाये अधिक हानि पहुँचाने की शक्ति नहीं रखते। ऐसे शत्रु को हम आसानी से वश में कर सकते हैं। मधुर-भाषण, दया से सना हुआ कार्य, उदार वचन—बस इतने से ही वही शत्रु हमारा मित्र और हितैषी बन जाता है। इस प्रकार हम उसको जीत लेते हैं। केवल प्रेम की डोरी, सहृदयता और अहिंसा का उच्च भाव शीघ्र ही उसको अपनी ओर आकर्षित कर लेता है, क्योंकि 'प्रेम' ही परमेश्वर है।

अतएव हमारी निन्दा करने वाला, दिन रात लोगों में हमारे प्रति बुरे भाव फैलाने वाला मनुष्य, हमारा शत्रु नहीं है बल्कि सच्चा मित्र है। वह हमें अपनी आन्तरिक दैवीशक्तियों—उदारता, सहानुभूति, युक्ति कौशल, दया और आत्मसंयम—के विकाश का अवसर देता है। वह जो हमारे साथ कुश्ती करता है, हमें अधिक मजबूत और शक्तिशाली बनाता है। वह जो हमारी परीक्षा लेता है, हमें शिक्षा देता है। वह जो हमारी शक्तियों को आह्वान करता है, हमें अधिक वीर्यवान बनाता है। हमारा घातक यह बाहिरी शत्रु नहीं यह तो हमारा मित्र है इसके साथ युद्ध करने में हम संसार में विजय करना सीखते हैं और जब हम सैकड़ों वार इसको पराजित कर देते हैं तब संसार को पराजित करना तुच्छ बात हो जाती है।

हमारा असली दुश्मन हमारे अन्दर रहता है। वह बड़ा कठोर, बड़ा दुष्ट, बड़ा मायावी, शक्तिमान,

चैतन्य और आजीवन द्वेषी है। बाहर के शत्रुओं को विजय करने की अपेक्षा इस आन्तरिक शत्रु को विजय करना अति दुःसाध्य है। इसके विजय करने में उन शक्तियों की आवश्यकता है जिनके प्राप्त होने पर अन्य सब प्रकार का विजय श्री लाभ आसान हो जाता है। जिस मनुष्य ने अपने आप को वश में कर लिया वह नगर के विजय करने वाले से श्रेष्ठतर है, यूनान के बादशाह सिकंदर ने बहुत से नगर और देश विजय किये किन्तु वह अपने आपको विजय न कर सका। सड़कके किनारे चिथड़े पहने बैठा हुआ डायोग्नी, धूलवाली सड़कों पर घूमने वाला महात्मा बुद्ध छोटी सी पाठशाला में बैठ कर पढ़ाने वाला सुकरात और बढ़ई का लड़का ईसामसीह—इन मनुष्यों ने नगर विजय नहीं किये, लाखों मनुष्यों पर आधिपत्य नहीं किया, परन्तु उनकी महत्ता एक दूसरे प्रकार की विजय से थी—जिस विजय के सामने सारा संसार सर झुकाता है और जिसकी प्राप्ति इन्द्रिय निग्रह से होती है।

सचमुच अपनी इन्द्रियों को वश में करने वाला जिसने अपनी शारीरिक, मानसिक, और आत्मिक शक्तियों को इसी एक कार्य में लगा दिया है, उस मनुष्य से लाख दर्जे अच्छा है जिसने अपनी सेना के द्वारा बड़े बड़े नगरों को वशीभूत किया हो। क्यों कि, यद्यपि मनुष्यों पर प्रभुता पाना बड़े गौरव की बात है परन्तु जिसने अपने आपको जीत लिया वह राजाओं का भी राजा है।

———

पाप में किसी को आनन्द नहीं मिला और न दुर्भावनाओं के बीच किसी ने शान्ति प्राप्त की है।

× × ×

सम्पत्ति का अभिमान मत करो क्योंकि प्रकृति के एक ही झोंके में बड़ी से बड़ी सम्पत्ति क्षणभर में चकनाचूर हो सकती है।

× × ×

जीवन का उद्देश्य।

सच्चे स्त्री और पुरुष का उद्देश्य व्यक्तित्व की उन्नति होताहै,न कि क्षणिक आनन्द। उन्नति प्रकृति का सार्वजनिक नियम है। शाहबलूत का फल अपने आप को अपने वृक्ष में पूर्ण करता है, छोटा सा अण्डा स्वर्ग के सुन्दर पक्षी अथवा प्रतापी उक़ाब में विकसित होता है। नवजात बालक पूर्ण स्त्री और पुरुष के पास ही बढ़ता है, जैसा कि अरस्तू का कहना है प्रत्येक प्राणी को उस जाति की अधिक से अधिक उन्नति से जांचना चाहिये। इसी कारण हमको बौने आदमी पर दया आती है, यद्यपि पूरा बढ़ने पर उसके भोजन और वस्त्र का व्यय भी बढ़ जाता है, किन्तु वह पूर्ण पुरुष नहीं होता हम अपने बच्चों के बढ़ने का ध्यान पूर्वक देखा करते हैं, उनकी उन्नति से हमको अत्यन्त आनन्द होता है और हमारा हृदय आत्मगौरव से भर जाता है। किन्तु हम उस बात को भूल जाते हैं कि वयस्क आयु प्राप्त कर लेने पर भी हमको उन्नति करने के कार्य को बन्द नहीं करना चाहिये। श्वांस लेने और भोजन करने के समान उन्नति भी जीवन भर करनी चाहिये। निरुत्साहियों के लिये दंड ही यह है कि उनकी उन्नति रुक जावे।

यदि आप नैतिक विकास को इन्द्रिय जन्य आनन्द के लिये उपेक्षा करोगे तो आप प्रेम, परोपकार, आत्मसंयम और त्याग के आनन्द का कभी उपभोग न कर सकोगे। जिस प्रकार बौने अथवा बहिरे को, मनुष्य जन्म की सब सुविधायें नहीं मिलतीं, उसी प्रकार उन्नति का न होना स्वयं भी एक दंड है,संसार में उत्पन्न होने वाले प्रत्येक बालक का कर्तव्य ऐसी उन्नति करना है जो निर्विघ्न और अविरल प्रवाह वाली हो, जो सभी विभागों में एक सी हो, जो जीवन भर सदा होती रहे, और जो केवल मृत्यु होने से ही रुके, ऐसी उन्नति को ही स्थिर एवं साधारण उन्नति कहते हैं।

——

मित्रता-निबाहना।

(सेठ प्रतापमलजी नाहटा)

तत्ववेत्ता इपिकरीटस का यह कहना है, कि मित्रों के साथ निरर्थक विषयों पर बात चीत न करनी चाहिये, यानी काम की ही बात-चीत करनी चाहिये, परन्तु निरर्थक क्या है और सार्थक क्या है, इस विषय में मतभेद हो सकता है "घोड़े कुत्ते, कसरत, खाना पीना इत्यादि" इपिकरीटस के कथनानुसार क्षुद्र विषय हैं. और ऐसे विषयों पर बात चीत न करनी चाहिये। इपिकरीटस और उनके मित्रों के लिये सम्भव है, यह ठीक हो। पर उसका यह अर्थ बहुत ठीक है, कि मित्र 'पर निन्दा अथवा स्तुति पाठ न किया करें।" पर-निन्दा की लत सचमुच ही बहुत बुरी होती है। जिसे यह लत लग जाती है वह जिस तिसकी निन्दा ही करता फिरता है, यहां तक कि अपने मित्रों को भी नहीं छोड़ता। परोक्ष में मित्रों की निन्दा करना मित्र धर्म के विरुद्ध है और इससे मैत्री टूट जाती है। पर इस लत का इतना प्रचार है, कि इस विषय में एक लेखक कहता है, कि 'एक दूसरे के पीछे उसके विषय में क्या कहता है, यह अगर सबको मालूम हो जाये, तो संसार में चार मित्रों का भी मिलना कठिन होगा।

पर-निन्दा से मन को कलुषित करने के बदले मार्कसआरी लियस का यह उपदेश अधिक मनोरंजक और साथ ही बोध-प्रद होगा, - "जिस समय तुम्हें अपना मनोरंजन करना हो, उस समय अपने संगी-साथियों के अच्छे गुणों का स्मरण किया करो। किसी की बुद्धि तीक्ष्ण है। कोई सदाचारी है, किसी में उदारता विशेष है, अपने साथियों के ऐसे ऐसे गुणों का ध्यान करो।" जहाँ पर-निन्दा होती हो वहाँ ऐसी चर्चा होने से बहुत अधिक और बड़ा सात्विक तथा लाभकारी मनोरंजन होगा। दोषों का ढूंढ़ निकालना कुछ कठिन नहीं है, जल के ऊपर वे तैरते रहते हैं, पर सद्गुणों के मोती ढूंढ़ निकालने के लिये समुद्र में गोता लगाना पड़ता है। मित्र के गुण बढ़ाकर कहने में उतना दोष नहीं है। पर उसके गुणों पर परदा डालना और दोष बढ़ाकर कहना पाप है।

गुण ग्राही मित्र गुण का आदर करता है। मित्र के गुणों का आदर करना और उन गुणों की वृद्धि में उसे बढ़ावा देना मित्र का काम है। अपने मित्र के गुणों की कदर न करने वाले मनुष्य की मित्रता केवल नदी नाव संयोग है। ऐसी मित्रता निभ नहीं सकती। सुख-दुःख में, संपद-विपद में, अध्ययन और मनोरंजन में, साथ रह सकने वाले मित्रों की मित्रता शुक्लेन्दुवत् बढ़ती ही जाती है। कई मित्र प्रयोजनाभाव से परस्पर मिलना तक छोड़ देते हैं। पर यह बड़ी भूल है। मित्रों को एक दूसरे से बराबर मिलते रहना चाहिये और बिना मिले कल ही न पड़नी चाहिये। मित्रों का एक दूसरे से न मिलना भी मित्रता के शिथिल हो जाने का कारण होता है।

धनादि से मित्र की सहायता करने में कभी अपने मन में भी उसका थोड़ा भी तिरस्कार न करो। मित्र को सहायता कर सकना अहोभाग्य है।

मित्र की सहायता करना जैसा मित्र धर्म है, वैसा ही मित्र धर्म मित्रको कष्ट न देना भी है। सरल और सहृदय देखकर किसी को बारबार सहायता के लिये कष्ट देना अनुचित है, यही नहीं, प्रत्युत मित्र का यह धर्म है कि वह जहां तक हो सके, ऐसा अवसर ही न आने दे, कि मित्र को कष्ट हो।

किसी समय यदि मित्र सहायता न कर सके, तो उतने से रुष्ट हो जाना भी ठीक नहीं। मित्र से अनुचित आशा करना तो मैत्री का केवल दुरुपयोग है। हमें सदा अपने को अपने मित्र की स्थिति में मान कर विचारना चाहिये, अयुक्त परिस्थिति

में हम अपने मित्र के लिये क्या कर सकते, जो काम हम न कर सकते, उसकी आशा अपने मित्र से कदापि न करनी चाहिये।

मित्रता के निर्वाह के सम्बन्ध में यह सुभाषित प्रसिद्ध है—

इच्छेच्चेद्विपुलां मैत्रीं त्रीणि तत्रन कारयेत्।
वाग्वादमर्थ सम्बन्धं परोक्षे दारभाषणम्॥

अर्थात् जो विपुल मैत्री चाहता हो, वह इन तीन बातों से अवश्य दूर रहे—वाग्वाद अर्थ-सम्बन्ध और मित्र के परोक्ष में मित्र-पत्नी से बात चीत।

"वादे वादे जायते तत्वबोधः" यह सुभाषित की सत्य है पर तत्वबोध के लिए जहाँ वाद होता है, वहीं के लिये यह ठीक है, अन्यथा अपनी-अपनी बात रखने के लिये जो वाद विवाद किया जाता है, वह केवल निरर्थक नहीं, अनेक बार हानिकारक भी होता है। कई बार शास्त्रार्थ होते होते शस्त्रार्थ आरम्भ होगया है। वाद-वाद के जोश में कितनों को होश नहीं रहता और एक दूसरे के दिलों पर वाग्बाण बरसाने लगते हैं, जिसका परिणाम यह होता है, कि वाद करने वाले ऐसे मित्रों का चित्त एक दूसरे से हट जाता है, कभी कभी दिल फट जाने की भी नौबत आती है। किसी विषय में मित्रों में मतभेद हो, तो उसके लिये वाग्वाद न करके एक दूसरे के मत का आदर करना चाहिये। ऐसी चर्चा ही न चलाना अच्छा, जिसमें मित्रों को अपने २ मत का आग्रह हो।

अर्थ-सम्बन्ध की बात ऐसी ही है मित्र एक दूसरे की सहायता करें, यह तो मित्र धर्म ही है। पर मित्रों में इस प्रकार का लेन देन का व्यवहार रहना, जैसा महाजन और आसामी होता है, अनुचित है। लेने देने में जो लाभ की आशा रहती है वह बढ़ते बढ़ते मैत्री को कुचल डालती है अंगरेजी में एक कहावत है :—

"Short reckonings make long friends"

"लेन-देन जितना थोड़ा मित्र प्रेम भी उतना गाढ़ा" होता है इसलिये मित्रों को आपस में लेन देन न करना चाहिये। अर्थ सम्बन्ध से मित्र जितना दूर रहेगा, उतना ही मैत्री निभाने के विषय सुखी होगा।

मित्र के परोक्ष में मित्र की पत्नी से बात चीत करना कई देशों के आचार में अशिष्ट नहीं समझा जाता। उन देशों का इस विषय में कोई भिन्न अनुभव हो सकता है। परन्तु हमारे देश में शिष्ट व्यवहार यही है, कि पुरुष के परोक्ष में स्त्री से भाषण न करना चाहिये। जो लोग अपने मित्रों से मित्रता निभाना चाहते हैं, उन्हें मित्र की अनुपस्थिति में उसकी पत्नी से कभी बात चीत न करनी चाहिये। मित्र की उपस्थिति में मित्र-पत्नी से वैसा ही व्यवहार करना चाहिये जैसा लक्ष्मण का सीताजी के साथ था। लक्ष्मण ने सीताजी के चरणों के सिवाय और किसी अंग का दर्शन नहीं किया था। किसी भी पर-स्त्री से भाषण करते हुए अपनी दृष्टि को उसके पैरों पर ही रखना चाहिये।

अनेक मित्रों की यह धारणा रहती है, कि मित्र से किसी बात का परदा न रखना चाहिये—कोई बात उससे न छिपानी चाहिये। पर यह कोई नियम नहीं, यह आवश्यक भी नहीं है। जिसके योग्य जो बात हो वही उससे कहनी चाहिये, यही साधारण नियम है। यदि कोई मित्र ऐसा है, कि उसके पेट में कोई बात नहीं पचती, तो उससे सब तरह के गुह्य कह देना अपने आपको धोखा देना है। इपिकरीटस ने जो कहा है, कि मित्रों से क्षुद्र विषयों पर बात न करो, इसका अर्थ और व्यापक कर यह कहा जा सकता है, कि मित्रों से व्यर्थ बातचीत करके अपना और उसका समय नष्ट न करो। ऐसा करने से जो बात न कहनी चाहिये, वह कभी न कही जायगी। व्यर्थ बातें करने वाले लोग अनेक बार ऐसी बातें कह डालते हैं, जिनके कहने से पीछे उन्हें अनुताप करना पड़ता है। मित्र से कोई

छल न करना चाहिये. इसका मतलब यह नहीं है, कि उससे कोई बात न छिपानी चाहिये।

मित्रों को एक बात का ध्यान रखना चाहिये। वह यह कि अनेक मित्रों में परस्पर कलह करा देने वाले चुगलखोर नामक जीव पैदा हो जाते हैं। कभी सच्ची, कभी झूठी और कभी "राई का पर्वत" बनाकर एक की बातें दूसरे को सुनाया करते हैं। इनसे मित्रों को बहुत सावधान रहना चाहिये। इनकी बातें सुनकर इन्हें मैत्री में विष फैलाने का अवकाश ही न देना चाहिये।

शक्की मिज़ाज के मित्रों से कभी सुख नहीं होता। शक्की मिज़ाज वाले मित्रता के अधिकारी ही नहीं होते। ऐसे लोगों से जहां तक बने, दूर रहना चाहिये।

सन्मित्र से समृद्धि सौभाग्य शालिनी होती है और संकट सुसाध्य होता है। दोनों अवस्थाओं में उससे उपकार होता है। इसलिये सन्मित्र का अभिनन्दन करो, सहायता करो, उसके लिये परिश्रम करो, संकट में उसकी रक्षा करो उस पर कोई आक्रमण करे तो उसके कंधे से कंधा लगाकर खड़े हो, उसके सुख से सुखी और दुःख से दुखी हुआ करो और जब वह विपद्ग्रस्त हो, तब उसे सान्त्वना दिया करो। ऐसा करो, तब समझा जायगा कि तुम अपना कर्तव्य पालन करते हो।

———

सात्विक सहायताएं।

१०) रा. कु. चन्द्रकान्ता जेरथ बी. ए. शिमला
५) बा० कँवलकिशोरजी बैजल, कानपुर
५) केडिया स्टोर्स, जलपाईगुड़ी
४) श्री गंगाचरणजी ब्रह्मचारी, उमरी
२॥=) श्री तोताराम परगीर, खँडवा
१॥) श्री पुरुषोत्तमदास मिमानी, सिरसा
१) श्री हरीरामजी यादव सिहोरा
॥) श्री रामकरणसिंह वैद्य, जफरापुर

नशा पीना छोड़ो।

(महात्मा गान्धी)

बहुत से लोग समझते हैं कि जो चीज़ हम खाते हैं वही आहार की सामिग्री है पर वास्तविक में यह नहीं है। शराब भाँग अफीम भी लोग खाते पीते हैं तो क्या यह भोजन है? इनको भोजन समझना पाप है। शराब ने न जाने कितने ही घर खराब कर डाले।

भांग की भी यही दशा है। भंगेड़ियों का घर प्रायः तबाह देखा गया है। अफीम से भी बड़ा नुकसान होता है। चीन का राज भी इसीके पीछे तबाह है।

तमाखू तथा सिगरेट और बीड़ी के भी न जाने कितने उपासक हैं। कितने ही पढ़े लिखे लोग भी इसके गुलाम हैं। इसके प्रचार में बड़ी बड़ी तरकीबें लगाई जाती हैं। नाना प्रकार के विषैले पदार्थों से यह सिगरेट तैयार होता है। लाटरी, बायसकोप, तथा नाना प्रकार के आमोद से समस्त यूरोप इसके प्रचार में लगा है। स्त्रियाँ भी इसकी उपासिका हैं। सिगरेट पर कवितायें भी बनाते हैं। आधुनिक सभ्यता ने भी भारत में इसका प्रचार खूब बढ़ा रक्खा है।

सिगरेट पीने वालों की विवेक बुद्धि ठीक नहीं रहती। वह चोरी तक करने को तैयार हो जाता है। रूसी ऋषि टालस्टाय ने लिखा है कि एक आदमी ने सिगरेट पीकर अपनी स्त्री की हत्या कर डाली। टालस्टाय की राय यह है कि वास्तविक में सिगरेट शराब से बढ़कर भयंकर नशा है। कितने तो सिगरेट के ही कारण दरिद्र बन रहे हैं। इससे पाचन शक्ति कम हो जाती है खाने पीने की लज्जत जाती है। दांत काला और चेहरा पीला पड़ता जाता है। मुंह से जो दुर्गंधि निकलती है उसे पास बैठने वाले कभी पसंद नहीं करते। स्वास्थ्य ठीक रखने के लिये सिगरेट तमाखू बीड़ी नशीली चीज़ों का छोड़ना जरूरी है। ये नशे हमारे धन को ही नष्ट नहीं करते, बल्कि परलोक दोनों बिगाड़ते हैं। ———

शब्द-योग का साधन।

(संकीर्तन)

शास्त्रकार कहते हैं कि "नहि शब्द सदृशोलयः" शब्द के समान मनको लय करने का और कोई सुगम मार्ग नहीं हैं। अधिकांश सन्त शब्द मार्गीय हुये हैं। कबीर जी प्राचीन सन्तों में शब्द मार्ग का अच्छा वर्णन कर गये हैं। वर्तमान राधा स्वामी सम्प्रदाय में शब्द साधना ही चलती है। इस प्रकार का शब्द साधन कोई नवीन साधन नहीं है। इस साधन से ऋषिगण भली प्रकार अवगत थे। उपनिषदों में इस साधन का विस्तृत वर्णन है। योग के ग्रन्थों में भी विस्तृत विवेचन है। नाद-बिन्दोपनिषत का तो यही विषय है। अवश्य ही दूसरे साधनों की भांति इसके आचार्यों के मतों में भी कुछ अन्तर मिलता है, लेकिन वह अन्तर केवल भावना भेद का है। सबका उद्देश मनोलय में है।

शब्द श्रवण के सम्बन्ध में आवश्यक यह है कि पहले नाड़ी शुद्धि करली जावे। कस्तूरी जायफल और मोम के संयोग से दो छोटी छोटी गुटिका लाल रेशमी वस्त्र में बांधकर बना लेना चाहिये, जिससे कर्ण छिद्र बन्द हो सकें। गुटिका कान के भीतर न चली जावे अतः वस्त्र का कुछ अंश बाहर रहने देना चाहिये। स्नान के अतिरिक्त सब समय गुटिका कान में लगी रहे तो अच्छा। पन्द्रह बीस मिनट पर निकाल कर उसे पोंछ लेना चाहिए। कान के भीतर से मैल आकर उसमें लग जाया करता है। यदि गुटिका बड़ी हो और कानों को कष्ट होता हो तो छोटी करलें। जब कानों को वह सह्य हो जावे तब पर्याप्त बढ़ा सकते हैं।

कुछ लोग तुलसी काष्ट से कानों को बन्द करते हैं। लेकिन वह कठोर होने से पीड़ा देता है। रुई, मोम और कड़ुए तेल के संयोग से भी गुटिका बनती है, किन्तु वह मैल को खींचती नहीं। कुछ लोग अभ्यास के काल में हाथों की अंगुलियों से कान बन्द करते हैं। ऐसा करने में हाथ जल्दी थक जाते हैं और देर तक अभ्यास नहीं चलाया जा सकता।

कुछ लोग साधकों को उष्ण औषधियों का सेवन कराते हैं। इससे नाड़ियां संतप्त होती हैं और नादोत्थान शीघ्र होता है। फिर भी ऐसा करना ठीक नहीं। मादक वस्तुओं के आवेश की भांति यह अस्थायी आवेश होता है। उसके पश्चात शिथिलिता आ जाती है। इससे साधक की शारीरिक और मानसिक दोनों हानि होती हैं। मनोलय को भूलकर वह नाद को प्रधान मान लेता है और दवा का आदी बन जाता है।

अभ्यास का समय ग्यारह बजे रात्रि के पश्चात प्रातः तीन बजे के भीतर रखना चाहिये। जब सब लोग सो गये हों, चारों ओर सन्नाटा हो तो नाद सुनने में अधिक सुविधा होगी।

गुटिका को भली प्रकार कानों में लगाकर, किसी बराबर स्थान पर कम्बल, मृगचर्म या कुशासन डालकर बैठ जाइये। अभ्यास के लिये किसी एक आसन पर बैठने में समर्थ होना आवश्यक है। बीच बीच में आसन बदलने से अभ्यास में बाधा पड़ेगी। मेरुदण्ड सीधा होना चाहिये और मन से सारी बातों को भुला देना चाहिये।

आरम्भ में दो तीन प्राणायाम करके सोऽहं, ॐ या दूसरे किसी मन्त्र का मानसिक जप, चार पांच मिनट मन को एकाग्र करने में सहायता देगा। तदनन्तर पूरा ध्यान शब्द की ओर लगा देना चाहिये। पहिले आंधी चलने या रेल के समान शब्द सुनाई देगा। उसके बाद झींगुर के बोलने के समान और फिर छोटी घण्टियों के बजने का शब्द।

घण्टियों के पश्चात घण्टे घड़ियाल बजने की ध्वनि होगी। उसके भीतर शंख का शब्द सुनाई देगा। शंखनाद के पीछे भेरी नाद, मेघ गर्जन और मुरली ध्वनि ये क्रमशः सुनाई पड़ेंगे। यह आवश्यक

नहीं कि ये सब शब्द इसी क्रम से सुनाई दें। इनके क्रम में उलट फेर भी हो सकता है। कभी किसी साधक को सहसा कोई ऊपर के क्रम का शब्द भी सुनाई देने लगता है और कभी वह पिछला शब्द असंयम या नाड़ी दोष से फिर आ जाता है, जिसे वह पहिले सुन चुका है।

साधन के समय हल्का सात्विक भोजन, ब्रह्मचर्य और मानसिक उत्तेजनाओं से बचना आवश्यक है। आहार विहार सर्वथा सात्विक रखने से ही सफलता प्राप्त होती है।

साधक को अनेक प्रकार के दृश्य ध्यान में दिखलाई पड़ेंगे। अनेक प्रकार के स्वादों का अनुभव होगा। योग ग्रन्थों एवं सन्तों की वाणियों में इन दृश्यों तथा रसों का विशद वर्णन है। उन सबको देने के लिये न तो यहां स्थान है और न उसकी आवश्यकता।

चाहे कोई भी दृश्य दिखलाई पड़े या कोई भी रस अनुभव में आवे, दृश्य सुन्दर हो या भयानक. रस मधुर हो या कटु साधक को उन पर ध्यान नहीं देना चाहिये। उसे न तो आकर्षित होना चाहिये और न घबड़ाना या डरना चाहिये। उसे अपना ध्यान केवल शब्द पर केन्द्रित रखना चहिये। यदि मन बहुत चंचल हो उठे तो उसी शब्द में अपने अभीष्ट मन्त्र की कल्पना करके उसको सुनने का प्रयत्न करना चाहिये।

इस प्रकार अभ्यास करते करते साधक का मन धीरे धीरे तमोगुण और रजोगुण का त्याग करके शुद्ध होता है। अन्त में वह शुद्ध सात्विक रूप मे स्थिर हो जाता है। तत्पश्चात साधक समाधि को प्राप्त करता है। शुद्ध सत्व को प्राप्त मन लय होता है और साधक समाधि अवस्था में पहुँच जाता है। बिना अन्तर दिये. नित्य निश्चित समय पर संयम पूर्वक साधन करने वाला सदाचारी साधक शीघ्र ही इस मार्ग से अपने मूल लक्ष्य को प्राप्त करता है।

———

उत्तम जीवन।

(श्रीयुत—महेश वर्मा,हर्बर्ट कालिज, कोटा)

यह कल्पना कर लेना कि केवल पुस्तकों के अध्ययन से तथा धार्मिक या तात्विक बातों को मान लेने से ही उत्तम जीवन प्राप्त हो जाता है और आत्मिक उन्नति के सिद्धान्त समझ में आ जाते हैं, एक साधारण भूल है। ऋषि मुनियों की अमृतोपम वाणी से आत्मनिष्ठा की परिपक्वता कदापि प्राप्त नहीं हो सकती। स्नान, ध्यान, यम-नियम, योग इत्यादि भी अपने अपने स्थान पर उत्तम हैं किन्तु वास्तव में इनमें से कोई भी हमें सफलता लाभ नहीं करा सकता।

उत्तम जीवन तो मन, बचन, तथा कार्य के शुभ योग से प्राप्त होता है। सर्वोत्कृष्ट मन जो चित्र बनावे, यही वचन अर्थात् वाणी से प्रकट हो, फिर वही कार्यों में परिणत हो जाये—तभी उत्कृष्टता प्राप्त हो सकती है।

मन को पूर्ण शान्त अवस्था में रखिए। समस्त भ्रान्तियों,सन्देहों, शक शुबार इत्यादि को निकालिये और श्रद्धा पूर्वक अपने संकल्पों का निर्माण कीजिए। कोई ऐसा कार्य नहीं जो दृढ़ श्रद्धा और दृढ़ संकल्प के योग से पूरा न हो सके। श्रद्धा तुम्हारे विचार की शक्तियों को केन्द्रित करेगी और संकल्प तुम्हें कार्य में संलग्न होने की प्रेरणा देंगे। मन, बचन, तथा कार्य जीवन के प्रेरक हैं। इन्हीं तत्वों के शुभ योग का प्रयत्न कीजिए।

———

× × ×

ज्ञान प्राप्ति के लिए अपने हृदय का द्वार सदा खुला रखो। हर बात पर विवेक और विवेचना के साथ विचार करो। अन्ध विश्वासी मत बनो, पर संशयी और अविश्वासी भी न होजाओ। तर्क और विवेक के आधार पर जीवन भर सत्य की खोज करते रहना चाहिए।

सच्चा नाता किससे ?

(श्री देशराज जी ऋषि, रुड़की)

माता अपने पुत्र से प्रेम करती है। स्वयं अनेक प्रकार के दुख उठा कर उसे सुख पहुंचाने का प्रयत्न करती है। बालक के प्रति माता की ममता असाधारण होती है। परन्तु वह बालक जब मर जाता है तो मृत शरीर के सामने उपस्थित होने पर भी वह व्याकुलता और बिछोह का अनुभव करती है। ऐसे ही पत्नी अपने पति का बड़ा आदर एवं मान सम्मान करती है। परन्तु वही शरीर जब मृतक होजाता है तो आदर मान सम्मान आदि व्यर्थ समझे जाते हैं। इससे प्रतीत होता है कि पुत्र, पति, पत्नि, माता भाई आदि के जो नाते माने जाते हैं वह उनके शरीरों से नहीं होते। क्यों कि शरीर तो मृत अवस्था में भी सामने उपस्थित होता है, फिर भी उससे कोई नाता नहीं रहता।

सच्चा नाता आत्मा का है। रामायण में कहा है—

पूजनीय प्रिय परम जहां ते।
माननीय सब राम के नाते॥

जब कभी, जिस किसी का—जिस किसी से भी नाता रहता है वह राम से—परमात्मा से ही रहता है। प्राणियों के शरीरों में स्थित आत्मा से, परमात्मा से, ही सब लोग विभिन्न भावों के अनुसार नाता रखते हैं। इसी के साथ विभिन्न भावों का संयोग करके आमोद प्रमोद और मनोरंजन करते हुए जीवन व्यतीत करते हैं। हमारा हर एक सम्बन्ध राम के साथ ही चलता है। अन्य कोई तत्व ऐसा नहीं है जिसके साथ किसी प्रकार का संबंध नाता स्थापित किया जासके या चल सके। इस नाते की वास्तविकता समझ लेना और उसे ठीक प्रकार निवाहने के लिए प्रस्तुत होना यही, आत्मिक साधनाओं का उद्देश्य है।

शेखीमत बघारो।

अभिमान और तुच्छता; आत्मप्रशंसा और शेखी के रूप में प्रगट होते हैं, जिससे उनका सामाजिक जीवन सबके लिये असह्य और अनाकर्षक बन जाता है। जनता आपकी प्रशंसा कर सकती है, किंतु वह उसको आपके मुख से सुनना नहीं चाहती। यदि आप अपनी प्रशंसा न्याय और सत्य के अनुसार भी करते हों, तो भी वह विरोधी हो जाते हैं और आपके दोषों को ही देखने लगते हैं।

अपनी सफलता को ऐतिहासिक स्त्री पुरुषों के कार्यों से तुलना करके नम्रता सीखो। ऊँट तभी तक अपने को ऊँचा समझता है, जब तक पहाड़ के नीचे नहीं आता। अपने से बड़े प्रसिद्ध पुरुषों से मिलते जुलते रहने का उद्योग करो। इस प्रकार की मित्रता आपको अत्यन्त प्रभाव पूर्ण नम्रता की शिक्षा देगी। इस बात को स्मरण रखो कि अभिमान से आप बहुत कुछ खो देते हो। अभिमानी को बहुत से मनुष्य न प्रशंसा करते न सहायता करते और न प्रेम करते हैं। अभिमान आपके व्यक्तिगत विकास को भी रोकता है। यदि आप अपने को सबसे बड़ा समझने लगोगे तो आप अधिक बड़ा बनने का यत्न करना छोड़दोगे। यदि आपने कोई कार्य ख्याति तथा विज्ञापन योग्य किया है तो उसके विषय में स्वयं कुछ मत कहो। आपको पता लगेगा कि उसके विषय में दूसरे भी किसी न किसी प्रकार कुछ अवश्य जानते हैं। इस प्रकार नम्रता से आपकी कुछ हानि नहीं होती। आपके गुण अधिक समय तक छुपे नहीं रहेंगे। आपको स्वयं उनकी घोषणा करने की आवश्यकता नहीं है।

पुण्य मय श्रेष्ठ कार्य करने में उतनी धन की जरूरत नहीं है जितनी कि सुहृदयता एवं दूर दर्शिता की। × ×

अखण्ड ज्योति द्वारा प्रकाशित अद्भुत पुस्तकें

(१) मैं क्या हूं मूल्य ।=)
(२) सूर्य चिकित्सा विज्ञान ।=)
(३) प्राण चिकित्सा विज्ञान ।=)
(४) पर काया प्रवेश ।=)
(५) स्वस्थ और सुन्दर बननेकी अद्भुत विद्या ।=)
(६) मानवीय विद्युत के चमत्कार ।=)
(७) स्वर योग से दिव्य ज्ञान ।=)
(८) भोग में योग ।=)
(९) बुद्धि बढ़ाने के उपाय ।=)
(१०) धनवान बनने के गुप्त रहस्य ।=)
(११) पुत्र या पुत्री उत्पन्न करने की विधि ।=)
(१२) वशीकरण की सच्ची सिद्धि ।=)
(१३) मरने के बाद हमारा क्या होता है ।=)
(१४) जीव जन्तुओं की बोली समझना ।=)
(१५) ईश्वर कौन है ? कहां है ? कैसा है ? ।=)
(१६) क्या धर्म ? क्या अधर्म ? ।=)
(१७) गहना कर्मणो गतिः ।=)
(१८) जीवन की गूढ़ गुत्थियों पर प्रकाश ।=)
(१९) पंचाध्यायी धर्म नीति शिक्षा ।=)
(२०) शक्ति संचय के पथ पर ।=)
(२१) आत्म गौरव की साधना ।=)
(२२) प्रतिष्ठा का उच्च सोपान ।=)
(२३) मित्र भाव बढ़ाने की कला ।=)
(२४) आन्तरिक उल्लास का विकास ।=)
(२५) आगे बढ़ने की तैयारी ।=)
(२६) अध्यात्म धर्म का अवलम्बन ।=)
(२७) ब्रह्म विद्या का रहस्योद्घाटन ।=)
(२८) ज्ञान योग, कर्म योग, भक्ति योग ।=)
(२९) यम नियम ।=)
(३०) आसन और प्राणायाम ।=)
(३१) प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ।=)
(३२) तुलसी के अमृतोपम गुण ।=)
(३३) आकृति देखकर मनुष्य की पहिचान ।=)
(३४) मैस्मरेजम की अनुभव पूर्ण शिक्षा ।=)
(३५) ईश्वर और स्वर्ग प्राप्ति का सच्चा मार्ग ।=)
(३६) हस्तरेखा विज्ञान ।=)
(३७) विवेक सतसई ।=)
(३८) संजीवन विद्या ।=)
(३९) गायत्री की चमत्कारी साधना ।=)
(४०) महान जागरण ।=)
(४१) तुम महान हो ।=)
(४२) गृहस्थ योग ।=)
(४३) अमृत पारस और कल्पवृक्ष की प्राप्ति ।=)
(४४) घरेलू चिकित्सा ।=)
(४५) बिना औषधि के कायाकल्प ।=)
(४६) पंच तत्वों द्वारा सर्व रोगों की चिकित्सा ।=)

कम से कम आठ पुस्तकें लेने पर डाक खर्च माफ। कम लेने पर डाक खर्च ग्राहक के जिम्मे होगा।

अखण्ड ज्योति के पाठकों को दो महत्व पूर्ण भेंट।

अखण्ड ज्योति के कार्यकर्ताओं द्वारा इस वर्ष पर्वतीयवन्य प्रदेशों की यात्रा के समय कुछ अमूल्य जड़ी बूटियां लाई गई हैं। इनके गुण असाधारण और आश्चर्य जनक है। इन बूटियों के वैज्ञानिक संमिश्रण से दो रसायनें बनाई गई हैं। (१) ओज वर्धक रसायन (२) गर्भ पोषक रसायन। ओज वर्धक रसायन से—मस्तिष्क की कमजोरी दूर होती है। बुद्धि बढ़ती है हृदय बलवान होता है। ओज बढ़ने से साहस, निर्भयता, चतुरता, उत्साह दीर्घायु प्राप्त होती एवं इन्द्रियों की शक्ति बढ़ती है। गर्भ पोषक रसायन—गर्भवती स्त्रियों के लिए है इसके सेवन से बालक स्वस्थ, पुष्ट, रंग के उज्वल, तेजस्वी एवं बुद्धिमान होते हैं। स्त्रियों को गर्भावस्था सुगमता पूर्वक पूरी हो जाती है। यह रसायनें पाठकों को बिना मूल्य दी जाती हैं। यह थोड़ी मात्रा में हैं इसलिए एक व्यक्ति एक ही रसायन मँगावें तो ठीक है। विशेष स्थिति में दोनों भी भेजी जा सकती है। सेवन विधि साथ है। मँगाने का खर्च प्रत्येक रसायन का छै आने है। यह टिकट के रूप में नहीं मनी आर्डर से भेजना चाहिये। —मैनेजर "अखण्ड-ज्योति" कार्यालय, मथुरा।

कवि से—

(राजकुमारी— रत्नेश कुमारी ' ललन ')

——

नये युग के आराधक मीत!— बनादो हे कवि! नूतन गीत।
जिनको सुनकर इन जीवित मृतकों में आये चेतन।
हरियाली फिर से पावे यह शुष्क विमूर्च्छित उपवन॥
इस निराश सुनसान, क्षितिज पर आयें आशा के घन।
पाकर नव सन्देश कर उठें मन मयूर कल नर्तन॥

इस टूटी बीणा में से भी, बजे भव्य संगीत।
नये युग के आराधक मीत,—बनादो हे कवि! नूतन गीत॥

हे निर्माता! अब ऐसे जीवन मय गीत बनाना।
सत्य और शिव सुन्दर का जिनमें हो ताना बाना॥
नव निर्माण कार्य करना है, नव संसार बसाना।
सड़ गल गईं पुरानी कड़ियां, जग होगया पुराना॥

यह शैतानी सत्ता हारे, दैवी जाये जीत।
नये युग के आराधक मीत! बनादो हे कवि! नूतन गीत॥

हे उत्पादक! इस मरु थल में नूतन बीज बखेरो।
अरे, सड़ी जाती है संस्कृति, इसको लौटो फेरो॥
युग युग की प्यासी मानवता मांग रही है पानी।
अपना हृदय निचोड़ पिलादो, हे तपसी! हे ज्ञानी!!

मर्त्य लोक में बरसादो अमृत के जलद पुनीत।
नये युग के आराधक मीत! बनादो हे कवि! नूतन गीत॥

चला मनुज मानवता को तज पशुता को अपनाने।
छोड़ त्याग, तप, प्रेम-सुसंयम, लगा लूटने खाने॥
इसको समझाओ, लौटाओ, पुनः मनुष्य बनाओ।
साधक! अपनी सर्व साधना यहीं समेट लगाओ॥

सुलझादो, उलझी गुत्थी जो हुई विषम विपरीत।
नये युग के आराधक मीत!-बनादो हे कवि! नूतन गीत॥

——